पू० गांधीजी का आशीर्वाद

भाई श्रीमन्,

'रोटी का राग' मैं पढ गया हूँ। कवितायें मुझको अच्छी लगी हैं। हेतु स्पष्ट और निर्मल है।..

सेगांव, (वर्धा)
२३-९-३६

बापू के आशीर्वाद

'नये युग का राग'

सरल, सम्कारी और सहृदय, इन्ही शब्दो में श्रीमन्नारायणजी की कविता का वर्णन हो सकता है। कवियो के सामान्य काव्य-विहार का पूरा-पूरा अनुभव लेकर और आजकल के मनुष्य-जीवन की विषमता देखकर हमारे कवि को शका हुई है कि क्या आजकल के कविगण जीवन से विमुख तो नही हुए है? वेदकालीन और उपनिषद्कालीन कवियो ने जीवन का पूरा-पूरा अनुभव लेकर उसके ऊपर अपना प्रतिभाशाली चिन्तन चलाकर विश्व का रहस्य ढूंढ निकाला। अगर वे जीवन से भाग जाते तो गगन-विहार और कल्पना-तरग में ही उन्हे अपनी वाणी समाप्त करनी पडती। जो जीवन-वीर है वही रहस्य की बाते कर सकता है। जिसने विश्वात्मैक्य का अनुभव करके प्राणीमात्र का दु ख अपने हृदय से सहन किया है और जो हृदय विकास होने के कारण अपने शरीर को भूल गया है वही अनन्त का गायन कर सकता है। जिन लोगो ने अपनी क्षुद्र वासनायें छोडी नही है, राग और द्वेष से जो लोग पूरे-पूरे भरे है, उनके मुँह में रहस्य की बाते और अनन्त का गान पवित्र वस्तु की दिल्लगी-सी करना प्रतीत होता है। गरीब के कष्टो से लाभ उठाकर जो लोग घी-दूध उडाते है और निश्चिन्त आजीविका के कारण शराबखोरो-जैसा गगन-विहार करते है और इस दुनिया को भूलकर काव्य-सृष्टि की रचना करते है, वे न तो मनुष्य-जाति की सेवा करते है, न रस-सृष्टि का निर्माण करते है। जीवन-वीरो की वाणी जीवन के इन विदूषको के मुँह में हँसीपात्र बन जाती है। इन जीवन-विदूषको ने अपना एक पथ चलाकर ज़मानो तक

"अहो रूप अहोध्वनि" चलाया। अव तो दुनिया इस रहस्य-विहीन रहस्यवाद से ऊव गई है।

प्राचीन काल से वहुत से कविलोग ऐश्वर्य के आश्रित वनकर रहे है। युद्ध-कुशल वीरो की और उनकी प्रणय चेष्टाओ की, राजाओ के दिग्विजय की और उनके दानशौर्य की, धर्मवीरो के त्याग की और उनके महात्म्य की कवितायें गा-गा कर कवियो ने अपने जीवन को और अपनी वाणी को कृतार्थ समझा। लेकिन वे तो आश्रित के आश्रित ही रहे।

अव वह ज़माना खत्म हो चुका है। कवियो ने भी देख लिया है कि अपना आश्रय-स्थान अव वदलना होगा। राजाश्रय छोडकर लोकाश्रय पाने के दिन आगये है। अव कवि भी अपने-अपने राष्ट्र का और अपनी जाति का गायन गाने लगे है। लेकिन जिनके पास सच्चा हृदय है, पीडित जनता का दुःख असह्य होकर जो लोग करुणा मूर्ति वन गये है, वे लोग वास्तविक को ही गाना पसन्द करते है। जो आदमी भूख से मर रहा है उसके लिए रोटी सत्य और बाकी सव कुछ मिथ्या दीख पडता है। रोटी कोटयावधि पीड़ित और दलित मनुष्य-जाति की प्रतिनिधि है। उसका राग गाकर कवि राजाश्रय या लोकश्रय नही ढूँढता है, किन्तु राजाओ का और लोकसमुदाय का हृदय जाग्रत करना चाहता है। इस-लिए वह कहता है,

> "साधारण जीवन के सुख दुख,
> गाऊँगा आडम्बर त्याग,
> सम्पति-विद्याहीन जनों का
> कल्याणमय रोटी का राग।"

धनी लोगो से गरीबो का जो पीडन होता है, हरिजनो का सवर्णों के द्वारा जो अपमान और तिरस्कार होता है, वह देखकर कवि का चित्त

जल उठता है और इस उद्वेग के कारण पुराने वैरागियो के समान वह जीवन को छोडकर जगल में भटकना और मनुष्य-समाज को भूल जाना और पानी और पवन पर ज़िन्दगी बसर करना पसन्द नही करता—

"विस्मृति के सागर में बहना,
हम अति तुच्छ समझते"

कहकर कवि अपना जीवन तत्त्वज्ञान ज़ाहिर करता है —

कंटकमय जीवन-पथ चलते,
पड़े पदों में छाले।
इन कॉंटों की पीर जगाने
को खाते हम रोटी,
पाकर जीवन-दान उसीमें
हो जाते मतवाले!

जो किसान तीनो ऋतुओ मे मेहनत-मजूरी करके सब दुनिया को खिलाते है उन्हीके घरो में पेटभर कर खाने को रोटी नही मिलती है। यह दैव-दुर्विलास देखकर किस आदमी की श्रद्धा विचलित न होगी ?

तोभी हमारे कवि ने कही भी किसी वर्ग का द्वेप नही सिखाया है। किसी के प्रति अनुदारता का उपदेश नही किया है। किसान की हालत कितनी बुरी है वह तो उसने अपने खून की आंखो से व्यक्त किया है। अछूतों के हृदय की पीडा जलते हुए शब्दो मे व्यक्त की है। तो भी इतना करते हुए भारत-निवासियो की शान्ति उसकी कविता में दीख पडती है।

हम काले हैं तो रहने दो!
कडी धूप में वस्त्रहीन ही,
कठिन परिश्रम करते रहते
फिर भी क्या गोरे ही होंगे ?

जो असभ्य कहते, कहने दो,
हम काले हैं तो रहने दो।"

"मत छूना हम तो अछूत है," वाली कविता में क्षमापरायण उदार-हृदयी दलित मनुष्यजाति के हृदय का उद्वेग भरा हुआ है। "गरम धूल में पैर झुलसते" वाली कविता के वातावरण का कई दफा मैंने अनुभव किया है। इसलिए उसका असर मेरे मनपर बहुत हुआ। "क्या भूखे हो मेरे लाल ?" वाली कविता में तो करुण रस मूर्तिमत हुआ है। और 'अग्नि तुम्ही हो प्राणाधार' मे निराशा प्रत्यक्ष खडी होती है।

हमारे सब कवि, साहित्यकार कलाकारो को अब प्रणयगान और प्रकृतिगान छोडकर और हाला, प्याला, मधुबाला की बाते कम-से-कम स्थगित कर सेवा में लग जाना चाहिए। श्रीमन्नारायणजी नये युग का यह नया सन्देश सुनाने में सन्तोष न मानकर स्वय सेवा-क्षेत्र में कूद पडे है। इसीलिए इनकी कविता का मूल्य बहुत कुछ बढा है। उनका सेवा-क्षेत्र जैसा बढेगा वैसी उनकी अनुभूति भी बढेगी और उनकी कविता में भारत का हृदय अधिकाधिक उत्कटता से व्यक्त होगा, ऐसी आशा हम अवश्य कर सकते है। उनकी शैली इतनी सरल और धारा-वाही है कि उनकी कविता शिष्टजन और सामान्यजन दोनो को समान रूप से रुचिकर होगी।

वर्धा
२४-८-३६

—काका कालेलकर

शुभकामना

श्री श्रीमन्नारायणजी का 'रोटी का राग' हम भूखों-टूटो को रुचेगा, इसका कहना ही क्या ? सुना है, इसके पहले आप अंग्रेज़ी में ही लिखा करते थे। हिन्दी में आपका यह पहला ही प्रयास है।

बापू के शब्दो में आपका 'हेतु स्पष्ट और निर्मल' है। छायावाद और रहस्यवाद के नाम से होने वाली रचनाओ पर आपका क्षोभ भी स्वाभाविक है, यद्यपि उसके बिना भी आपका काम चल सकता था। अन्तत रोटी ही जीवन नही, भले ही वह जीवन के लिए अनिवार्य हो। जो हो, हमें नये कवि का कृतज्ञ ही होना चाहिए जिनका हृदय हमारी जठराग्नि से पिघल उठा है।

मै उनके भविष्य की अधिकाधिक सफलता की आशा रखता हूँ।

चिरगांव —**मैथिलीशरण**

२२-४-३७

मेरे भी दो शब्द

'फाउन्टेन ऑव लाइफ़' नामक मेरी पहली कृति अंग्रेज़ी में ही प्रकाशित हुई। कविवर रवीन्द्रनाथ ने प्रशंसा का एक पत्र भेजा और प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन् ने प्रस्तावना लिखी। इन महापुरुषों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन मेरे लिए बड़ी बात थी। किन्तु योरप जाकर मेरी आँखें खुल गईं। अपने हृदयोद्गार को मातृभाषा में न लिखकर, एक विदेशी भाषा द्वारा व्यक्त करना कितना अस्वाभाविक और निन्दनीय था, यह मैं भलीभाँति समझ सका।

'रोटी का राग' मेरी हिन्दी कविताओं का पहला संग्रह है। पूज्य बापूजी, कविवर मैथिलीशरणजी और श्रद्धेय काकासाहेब का आशीर्वाद पाना मेरे लिए सचमुच हर्ष और गौरव की बात है।

मैं भी पहले कुछ 'छायावादी'-सा था। किन्तु दरिद्रनारायण के दर्शन से मेरा स्वप्न टूट गया, हृदय सिहर उठा, और 'रोटी का राग' ध्वनित होने लगा। मैं मानता हूँ कि 'रोटी जीवन नहीं है' और शायद उसका राग अलापना कविता का अपमान करना है, किन्तु एक भूखे देश की अनन्त वेदना को देखकर मैं कैसे चुप रहूँ? और भावों का गला घोटना क्या कविता का अपमान करना न होगा?

वर्धा
१–५–३७

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

"दूसरा संस्करण"

इस सस्करण में कुछ 'फुटकर' कवितायें शामिल नही की गई है। अन्य कविताओ में भी कही-कही थोडा परिवर्तन किया गया है।

पुस्तक के ऊपर 'हलधर' का चित्र भी नया है।

आशा है, "रोटी का राग" का यह सस्करण पाठको को रुचेगा।

—श्री० अ०

विषय-सूची

रोटी का राग

: १ :

क्या होगा गाकर 'अनन्त' का
नीरव और 'मदिर' संगीत ?
मलयानिल के उच्छ्वासों का
मर्मर, निर्झर-झरझर गीत ?

कनक रश्मियों के गौरव से
क्या होगा दुखियों का त्राण;
रूखी रोटी ही में जिनको
है यथार्थ जीवन का प्राण ?

होगा क्या बनवाकर कविते,
तुहिन बिन्दु की निर्मल माल ?
विस्मृति के असीम सागर मे
फैलाकर स्वप्नों का जाल ?

कबतक सुनता रहूँ बन्धु मैं,
मतवाले अलि की गुन्जार ?
क्यों 'पागल' बनकर मैं घूमूँ
भूल सकल मानव, संसार ?

निष्फल है निर्मम अतीत का
छायायुत, रहस्यमय गान !
हंसी-मात्र है उस 'अनन्त' की
बांकी, मन्द, मधुर मुस्कान

साधारण जीवन के सुख-दुख
गाऊँगा आडम्बर त्याग,
सम्पति-विद्याहीन जनों का
करुणामय रोटी का राग ।

: २ :

नहीं मिला मेरा प्रियतम, कवि !
नभ के दिव्य सितारों में,
देखा नहीं कभी उस मुख को,
मुक्ता के इन हारों में !

ढूंढ़ा हरित, सौम्य उपवन की,
सुन्दर, पुलकित कलियों में
ऊषा के शीतल पत्तों पर,
तुहिन-बिन्दु की 'फलियों' मे !

तप्त कपोलो पर आँसू की,
बूंदें भी देखीं गिरती,
लोल लहरियाँ भी सरिता की,
जिनमें ताराएँ तिरती ।

श्रावण की वर्षा का गौरव,
भली भाँति मैंने गाया,
किन्तु कहीं भी उस स्वरूप का,
दर्शन, ज्ञान नहीं पाया।

गया अन्त में एक खेत पर,
जहाँ कृषक करता था श्रम,
ज्योंही देखे बिन्दु भाल पर,
दूर हुआ मेरा सब भ्रम।

स्वेदकणों में प्रियतम की, कवि,
मुझको सुखमय झलक मिली,
इस रहस्य की प्रखर रश्मि से,
मेरी जीवन-कली खिली !

: ३ :

रूखी रोटी या रहस गान !
देखूँ अरुण उषा की लाली,
या तन के मुरझाये प्राण ?

निज पुत्रों की करुण दशा पर
अश्रु वहाऊँ, या नित गाऊँ,
कुसुमाकर की कीर्ति महान ?

शीतकाल के क्रुद्ध अनिल से
ढाकूँ अपना वस्त्रहीन तन,
या बैठा देखूँ 'अनन्त' की,
गुप्त, मदिर, मंजुल, मुस्कान ?

उड़ूँ कल्पना के पंखों से
स्वप्नलोक के ही उपवन में,
या सींचूँ इस कठिन भूमि के
अपने नन्हें पौधे म्लान ?

खेती ही है मेरी सम्पति,
श्रमकण ही हैं मेरे मोती,
पृथ्वी पर हल के चलने की,
ध्वनि ही मेरा अनंत गान !

रूखी रोटी या रहस गान ?
देखूँ अरुण उषा की लाली,
या तन के मुरझाये प्राण ?

: ४ :

हम तो रोटी के मतवाले !
नहीं चाह मदिरा की साक़ी
क्या होंगे ये प्याले ?

सुरापान कर जीवन के दुख
नहीं भूलना हमको,
हम तो दुख-जीवन के प्रेमी,
गावें राग निराले !

विस्मृति के सागर में बहना,
हम अति तुच्छ समझते,
कंटकमय जीवन-पथ चलते,
पड़े पदों में छाले ।

इन काँटों की पीर जगाने
को खाते हम रोटी
पाकर जीवन-दान उसी में
हो जाते मतवाले !

: ५ :

प्रिय ! अनन्त की झलक कहाँ है ?

श्यामा रजनी की अलकों में,
अरुण उषा के शुचि पलकों में ?
निर्मल सरि के वक्षस्थल पर,
चन्द्र-सितारों की झलकों में ?
चलो चलें सुख-शान्ति जहाँ है,
प्रिय ! अनन्त की झलक कहाँ है ?

दुखी जनों के तप्त उरों में,
उजडे, आभाहीन घरों में,
निर्धनता के कठिन कोपमय,
हृदयहीन पाषाण करों में ।
कृषकों के इन बैल, हलों में,
खेतों के सब नाज, फलों में,
मिल-मज़दूरों का शोणित-रस
पीनें वाली जटिल कलों में,
चलो चलें दुख-क्रान्ति जहाँ है,
प्रिय ! अनन्त की झलक वहाँ है !

: ६ :

कवि ! पागल तुम 'मधुशाला' में,
मैं पागल तव पागलपन पर !

मतवाले हो मधुशाला की,
मस्तानी मदिरा में !
ध्यान नहीं जाता किंचित भी,
दुखियों के क्रन्दन पर !

कवियों का मानस तो कोमल,
द्रवीभूत होता है,
किन्तु तुम्हारे उर में जगती
दया नहीं कवि, पलभर !

सुरापान तो तुम्हें सुहाता,
चिर जीवो मतवाले,
हम तो मस्त इसी रोटी में,
श्रम मिस रक्त बहाकर !

: ७ :

खूब बरसलो तुम भी आज !
यह आंखें तो सदा बरसतीं,
तुम भी खूब बरसलो आज !

इस छोटी-सी सड़ी झोंपड़ी,
में जलधर क्या पाओगे ?
सभी ओर तुम टपक-टपक कर
जल ही व्यर्थ गँवाओगे !
तुम बरसो, मैं भी बैठा हूँ,
होगा नहीं किसी का काज,
खूब बरसलो तुम भी आज !

लूट लिया सब दरिद्रता ने,
गया लाल भी पिछले साल,
रखता है क्या कोई आशा,
अब यह फूटा हुआ कपाल ?

कौन नये अंकुर उपजाते,
आये हो जो सजकर साज ?

शान्त रात्रि के इस क्षण में क्या
तुम्हें पड़ी थी आने की,
दिनभर श्रम कर मैं सोया था,
क्या यह घड़ी जगाने की ?
सुनने आये हो कि सुनाने,
मेरा अपना 'टप-टप' बाज ?

: ८ :

चाह नहीं मुझको सुननें की,
मोहन की वंसी की तान,
क्या होगा उसको सुन सुनकर,
भूखे भक्ति नहीं भगवान !

अनहद नाद सुनूँ मैं क्यों प्रिय,
होगी व्यर्थ चित्त में भ्रान्ति,
मुझको तो रोटी के कण में,
मिलती है असीम चिर शान्ति !

इच्छा नहीं मुझे सुनने की,
दुख-वीणा का करुण विहाग
आओ मिलकर नित्य अलापें,
अति पुनीत रोटी का राग।

रोटी की रटना लगी, भूख उठी है जाग
आठ पहर, चौसठ घडी, यही हमारा राग !

: ६ :

कहाँ सुनूँ रोटी का राग ?

मन्दिर या गिरजे के घंटों
की अघनाशक टन् टन् टन् में ?
सोने चाँदी के सिक्कों की,
हृदयहारिणी खन् खन् खन् में ?

देश देश के कुशल गवैयों
के मन-मोहक मधुर स्वरों मे ?
सभी भांति के बाजों की ध्वनि,
या तारों की झन् झन् झन् में ?

नाजभरी गाड़ी की चूँ चूँ,
चरखे की भीनी भन् भन् में,
ग्राम झोंपड़ी में लुहार के,
क्रुद्ध हथौड़े की टन् टन् में,

नदी किनारे पत्थर पर ही
धोबी के अति ध्वनिमय श्रम में,
ग्रामवधू की शिला-सहेली—
आटा-चक्की की घन् घन् में

जीवन का रसपूर्ण विहाग !
यहाँ सुनो रोटी का राग !

: १० :

छाया है कैसा वसन्त !

इसकी मञ्जु, मनोहर छवि में,
नव पत्तों के मधुमय यौवन,
औ' पुष्पों के गन्ध-विभव में,
कवि पायँगे झलक रहसमय।
देखेंगे प्रियतम अनन्त !

शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन का
स्वागत करतीं कली किलककर,
मदिर राग इन मस्त सुमन का,
दूर-दूर लेकर मलयानिल
रञ्जित करता है दिगन्त !

कोयल की मतवाली ध्वनि से
प्रेम झलकता कवि के उर में,
मत्त भ्रमर के कल गुञ्जन से,
विरह उमड़ता नारि-हृदय में।
सुरति-शब्द सुनते सुसन्त !

किन्तु प्रकृति की सुन्दरता को,
रही मिटा यह सड़ी झोपड़ी;
शुचि वसन्त की गुरु गरिमा को,
रहा कलंकित कर मम जीवन।
कवि ! दोनों का करो अन्त,
फिर देखो सुन्दर वसन्त !

: ११ :

अग्नि ! तुम्हीं हो प्राणाधार !

रात अंधेरी
शीत घनेरा,
निर्धनता ने डाला डेरा,
वस्त्रहीन तन
थर-थर कांपे,
दुर्बल हूँ मैं सभी प्रकार !
अग्नि ! तुम्हीं हो प्राणाधार !

टूटी फूटी
कुटिया मेरी
नागिन-सी यह निशा अंधेरी,
अन्ध, बधिर विधि
कब सुनता है,
हम दीनों की हाय पुकार !
अग्नि ! तुम्हीं हो प्राणाधार !

अनिल, उपल, जल
तीनों मिल कर
टूट पड़े इस फूटे घर पर !
निठुर ठिठुर कर
स्वयं प्रकृति भी,
सिहर रही है बारंबार !
अग्नि ! तुम्हीं हो प्राणाधार !

रही बुभुक्षा
जो चिर चंडी
पडी आज तो वह भी ठण्डी
आज दग्ध कर
के भी मुझको
देव, करोगे तुम उपकार !
अग्नि ! तुम्हीं हो प्राणाधार !

: १२ :

मेरा प्रियतम नहीं मिलेगा,
धन, सम्पति के वैभव में,
नहीं मिलेगी उसकी सुषमा,
वीरों के बल-गौरव में,

मन्दिर के गर्भागारों में,
योगी के हठयोगों में,
हास विनोदों के विलास में,
भूरि भूरि भव भोगों में!

जहाँ क्षुधा नित अश्रु बहाती,
दुःख-नदी के निर्जल तीर,
जहाँ रंक रोते गाते है,
इस जीवन की दारुण पीर,

पाओगे तुम उस प्रिय मुख की,
मन्द, मधुर, मुस्कान वहीं,
दैवी स्वर के मंजु गान की,
अति पावन मृदु तान वहीं!

: १३ :

कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

गोपि हृदय में कृष्ण-विरह का
अनुपम, क्रीड़ामय संगीत ?
कामदेव के प्रेम-बाण की
उष्ण दाह, अति गुप्त पुनीत ?
या श्रमकण मिस रक्त बहावें ?
कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

क्या गावें हम यहाँ बैठकर
कनक-रश्मियों का सौन्दर्य ?
रवि की अनल-रूप वर्षा का
कल्पित, भावपूर्ण ऐश्वर्य ?
या निज क्रन्दन करुण सुनावें,
कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

तप, वर्षा, हिम में श्रम करके,

सुखा रहे हैं सदा शरीर,

तो भी निर्धनता ने घेरा,

कब तक कहो, धरें हम धीर ?

मन को कब तक नाच नचावें,

कड़ी धूप में हम क्या गावें ?

: १४ :

ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पटा फूस से
दर कच्चा है
टूटा फूटा
सब अच्छा है
नहीं चोर का कुछ भी डर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

नहीं सुनहरी
चमक दमक है,
बस गोबर ही
विमल कनक है,
इस पर ही जीवन निर्भर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

गंगा यमुना
यहाँ कहाँ हैं !
वे तो बहतीं
धनी जहाँ हैं,
मेरा तीर्थ यही निर्झर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पुत्र-जन्म पर
गान नहीं है,
हम कृषकों की
शान यहीं है,
शीत अनिल का ही शुचि स्वर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

: १५ :

लू, तू भी अब मनकी करले !

वृष्टि, शीत ने तो दिल भरके,
सहवाये दुख, कष्ट महान,
नग्न बंदन पर नित प्रहार कर
ख़ूब जमाई अपनी शान !
रक्त सुखा अपना जी भरले,
लू, तू भी अब मन की करले !

मलयानिल तो बहता रहता
कवि के ही मधुमय उपवन में,
हम ग़रीब अति दीन जनों की
सुखद वाटिका उष्ण पवन में,
री मतवाली—! तू मन हरले,
लू, तू भी अब मन की करले !

क्या तू है प्रेमी के दिल की
आह भरी प्रेमातुर स्वास
विरहानल से तप्त हृदय की,
व्याकुल, रहसमयी उच्छ्वास !
असह वेदना दे दिल भरले,
लू, तू भी अब मन की करले !

हम दुर्बल, निर्धन कृषकों को
सभी सताते हृदय खोलकर
शान्ति, प्रेम तो कभी न आते
फूटे मुँह भी कभी बोलकर,
इन प्राणों को भी तू हरले !
लू, तू भी अब मन की करले !

: १६ :

रहसवाद को हम क्या समझें ?

पढ़ना हमने कभी न जाना,
हमने तो काला अच्छर, कवि,
भैंस बराबर ही था माना,
क्या 'अनन्त', उसका अकार तक,
हमने नहीं कभी पहचाना,
स्वप्न-जाल में फिर क्यों उलझें ?
रहसवाद को हम क्या समझें ?

हमको तो दुख ही है पाना,
कड़ी भूमि में बैल जोतकर
खुद मिहनत कर हल चलवाना
कवि ! पंखों से उड़ 'अतीत' की,
छाया को तुमने ही जाना !
रोटी से तो पहले सुलझें,
रहसवाद को हम तब समझें !

: १७ :

है कृषकों की कैसी शान !

दिन भर श्रम करते रहते हैं,
सब ऋतुओ में दुख सहते हैं,
विविध भाँति के अन्न उगाकर,
जग का सदा पेट भरते हैं,

किन्तु स्वयं भूखे ही मरते,
छोड़ सभी आदर सनमान !
है कृषकों की कैसी शान !

रुधिर सुखाकर मिहनत करते,
वर्षा, शीत, धूप सब सहते,
नहीं सताया कभी किसी को,
फिर भी सदा पुलिस से डरते।

क्या इससे भी अधिक किसी को
हो सकता गौरव, अभिमान ?
है कृषकों की कैसी शान !

अनपढ़ हैं, असभ्य कहलाते,
सभी लोग निज रौब जमाते,
पशु से भी दयनीय दशा में,
किसी तरह दुख-दिवस बिताते,

रूखी ही रोटी मिल जाना,
अपना है सौभाग्य महान्!
है कृषकों की कैसी शान!

ईश्वर की प्रतिदिन सुधि करते,
कष्ट किन्तु जाते हैं बढ़ते,
अन्यायों की करुण कहानी,
नहीं किसी से हम कह सकते,

भारत-माँ यह दशा देखकर,
गाती है दुख ही के गान!
है कृषकों की कैसी शान!

: १८ :

कितनी मीठी रूखी रोटी !

दुखी ! नहीं,
हम दुखी नहीं हैं !
सुखी ! नहीं,
हम सुखी नहीं हैं !
हम सुख दुख से परे हुये हैं,
खा-खाकर यह सूखी रोटी !
कितनी मीठी रूखी रोटी !

क्षुधा सताती है जब हमको,
सुख-दुख सभी भूल जाते हैं,
रूखी सूखी रोटी ही को,
बड़े स्वाद से हम खाते हैं !
सूखी-रूखी छोटी-मोटी,
हा ! कितनी मीठी यह रोटी !

धनी लोग जानें क्या भाई,
इस रूखी रोटी का स्वाद !
इस रूखेपन के सम्मुख तो,
फीका हुआ अमृत आह्लाद !
रहे खरी, पर क्या वह खोटी ?
है कितनी मीठी यह रोटी !

: १६ :

बन्धु, आज मिल खेलें होली !

दुःख भूलकर, ऐक्य जगाकर,
द्वेष, क्रोध, मद, लोभ भगाकर,
अमल प्रेम का नाता जोड़ें,
बोल सभी से मीठी बोली,
बन्धु, आज मिल खेलें होली !

चलो चलें खेतों के अन्दर,
जौ, गेहूँ लगते अति सुन्दर,
पौधों से भी प्रीति करेंगे,
बिखरा कर उनपर यह रोली,
बन्धु, आज मिल खेलें होली !

पशु तो हैं साथी निशिदिन के,
हम चिर ऋणी रहेंगे जिनके,
उनके पास चलें मन मिलकर,
गाय खड़ी है कैसी भोली,
बन्धु, आज मिल खेलें होली !

नेमि

भारत-माँ ! हम तुझे न भूलें,

तेरी ही गोदी में झूलें,

चाहे कैसे कष्ट सतावें,

सदा रहे हिल-मिल यह टोली,

बन्धु, आज मिल खेलें होली !

: २० :

आज हमारी वर्षगाँठ है !

भेंट मुझे देंगे कुछ मित्र ?

हा ! हा ! हा ! धनि ! जानो क्या तुम,

हम कृषकों की शान विचित्र ।

भोजन, कपड़े पास नहीं कुछ,

पर लगान देना बाक़ी है,

आया कुर्क-अमीन यहीं है,

उससे जान बचा "साकी" ।

धनि ! भूखे रहकर संध्या तक

माल बेचकर कर्ज़ चुकाना,

कर मिहनत खेतों में भरसक,

किसी तरह दिन आज बिताना,

यही हमारा ठाट बाट है

आज हमारी वर्षगाँठ है !

: २१ :

गर्म धूल मे पैर झुलसते !

काका ! तुमने सुबह कहा था,
“जूते आज मँगाकर दूँगा,”
अगर न आये इसी शाम तक,
तो फिर उनको कभी न लूँगा !
कब तक घूमूँ हँसते हँसते
गर्म धूल मे पैर झुलसते !

वर्षा की मिट्टी कीचड मे,
जाडों मे ठण्डी धरती पर,
अब गर्मी की जलती रज मे,
कैसे चलता रहूँ धमक कर,
गाय चरा लाऊँ किस रस्ते,
गर्म धूल मे पैर झुलसते !

काका ! तनपर वस्त्र नहीं है,
बडे वेग से लू चलती है,

सूरज की किरणों से तपकर
व्याकुल हुई धरा जलती है,
बाहर कैसे फिरूँ हुलसते,
गर्म धूल में पैर झुलसते !

: २२ :

हम काले हैं तो रहने दो!

कड़ी धूप मे वस्त्रहीन ही,
कठिन परिश्रम करते रहते,
तिसपर भी हम सभी तरहके,
कष्ट, क्लेश निशदिन ही सहते,
फिर भी क्या गोरे ही होंगे?
जो असभ्य कहते, कहने दो,
हम काले हैं तो रहने दो!

हम तो निर्धन हैं ज़मीन पर
धूल धूसरित सो रहते हैं,
सोप, क्रीम या इत्र नहीं कुछ,
अति गँवार इससे कहते हैं,
यह अभिमान धनी लोगों का!
उनको निज मद में बहने दो,
हम काले हैं तो रहने दो!

धनी जनो ! निज काम करो तुम,
व्यर्थ समय मत नष्ट करो तुम,
हमको तो रहने दो दुखिया,
धन लेकर निज धाम भरो तुम,

गौर वदन तो तुम्हें सुहाता,
हमें शान्ति से दुख सहने दो,
हम काले हैं, तो रहने दो !

रन्ताग्नीन

: २३ :

मत छूना, हम तो अछूत है !

हमको छूकर आप व्यर्थ ही
गंग नहाने जायेंगे,
विप्र ! कदाचित स्वर्गलोक मे,
आप न घुसने पायेंगे।
धर्म आपका भ्रष्ट कराने
मे हमको क्या मिलता है,
हमको तो यमदूत नरक ही
ले जाने को आयेंगे।
भारत माँ के हम कपूत हैं,
मत छूना हम तो अछूत हैं !

हमसे तो पशु भी हैं अच्छे,
उसको छूना पाप नही,
लो पुचकार श्वान को चाहे,
भूल न छूना हमे कही,

निर्धन हैं, पवित्र कैसे हो

नहीं मिलेगी मुक्ति हमें,

स्वर्गपुरी में आप विचरना,

हमें छोड़दो विप्र यहां !

क्या हो सकते हम सपूत हैं ?

दूर रहो, हम तो अछूत हैं !

: २४ :

कलाकार ! सौन्दर्य कहाँ है ?

रेशम के रंजित, चमकीले.
वसनों की बहुवर्ण घटा में ?
हीरक, मोती, जड़ित कान्तिमय
आभरणों की अमल छटा में ?

इस साधारण खादी में भी
है अनुपम सौन्दर्य झलकता,
इसके भी धागों में, कविवर,
है उनमत आनन्द छलकता ?

कलाकार ! कहते हो रोटी
में सौन्दर्य नहीं कुछ मिलता !
मेरा जीवन-पुष्प सदा, कवि,
रूखी ही रोटी से खिलता !

: २५ :

क्या भूखे हो मेरे लाल ?

रोते हो इस बेचैनी से
पड़े पड़े क्यों तुम मिट्टी में,
कपड़े सब मैले होते हैं,
लिसे धूल में सुन्दर बाल,
क्या भूखे हो मेरे लाल ?

आँखों से आँसू की धारा,
निकल निकल धरती पर गिरती,
उठो ! उठो ! मत रोओ प्यारे
यह क्या हुआ तुम्हारा हाल !
क्या भूखे हो मेरे लाल ?

आते ही होंगे अब दादा,
लेकर कुछ पैसे निज श्रम के,
लाऊँगी कुछ चने जल्द ही
खाना फिर तुम रोटी दाल,
भूखे ही हो मेरे लाल !

किन कर्मों के कारण, ईश्वर
सदा सताते हम दीनों को !
कब तक यह दारुण दुख सहना,
बीत रहे सालों पर साल !
हाय, करूँ क्या मेरे लाल ?

शीतल पवन वेग से बहता,
सन्ध्या हुई अन्धेरा छाया,
वे क्यों आये नहीं अभी तक,
कहाँ रहे मेरे प्रतिपाल !
उठो, प्राणप्रिय मेरे लाल !

‘भारत-गान’

: २६ :

जय ! जय ! हे जग के परमेश्वर,
विनती सुनों हमारी !

विद्या, ज्ञान, प्रेम की किरणो
से खिल जावे हम सब कलियाँ,
फैलावे प्यारे भारत मे,
खुशबू न्यारी न्यारी ।

हिलमिल कर हम रहे सदा प्रभु,
सेवा को ही धर्म बनावें,
आजादी के सैनिक बनकर,
गावे कीर्ति तुम्हारी !

: २७ :

होगा कब स्वातन्त्र्य प्रभात ?
विकसित होगा कब स्वराज्य का
गौरवपूर्ण, विमल जलजात ?

कब बीतेगी अन्धकारमय,
पारतन्त्र्य की काली रात !
मुक्तसूर्य का नव-प्रकाश कब,
फैलेगा भारत में, तात ?

जिस दिन होगा प्रेम परस्पर,
भूल सभी जातीय विभेद,
हिन्दू, मुस्लिम, ब्राह्मण, हरिजन,
मेंटेंगे जीवन विच्छेद,

धनी पुरुष जिस दिन कृषकों से
गले मिलेंगे त्याग गुमान,
उनकी ही निश्चल सेवा मे,
समझेंगे वे अपनी शान,

उसी दिवस सूखेगा माँ के
व्यथित हृदय का अश्रु-प्रपात,
मलिन पुष्प भी सुरभित होंगे,
होगा शुचि स्वातंत्र्य-प्रभात।

: २८ :

उठो, उठो, भारत के लाल !

भारत माता खड़ी पुकारे,
सोते ही रह जाओगे ?
अधःपतन की धारा में क्या,
डूब डूब बह जाओगे ?
कहाँ गया भारत का गौरव,
कहाँ गया धन, मान, सभी ?
क्या प्राचीन कीर्ति से उज्ज्वल
होगा हिन्दुस्तान कभी ?
शोचनीय माता का हाल !
उठो ! उठो ! भारत के लाल !

विद्या, कला, ज्ञान, गौरव से,
पूर्ण रहा था भारतवर्ष,
यह दयनीय अधोगति उसकी,
क्या फिर होगा वह उत्कर्ष ?

भूखी है परतन्त्र हुई है,
नहीं रहा मुख पर सौन्दर्य,
तनपर अच्छे वस्त्र नहीं हैं,
लोप हुआ सारा ऐश्वर्य !
दुःखपूर्ण माता का हाल;
उठो ! उठो ! भारत के लाल !

: २९ :

आओ गावें भारत गान !

जातिपांति का भेद भूलकर
सब मिलकर बस एक राग ही
नित्य अलापें हृदय खोलकर
"हो कैसे आज़ाद हमारी,
प्यारी जननी, भारत माता !"

पराधीन रहकर भी क्योंकर
हो सकता गौरव, अभिमान !
आओ, गावें भारत गान !

जबतक हम आज़ाद नहीं हैं,
तबतक तो अस्पृश्य सभी हैं,
भेद-भाव को फिर भी रखने
में हो सकती कोई शान ?

आओ गावें भारत गान !

आपस में लड़ लड़कर हरदम,
सब कुछ ही हम खो बैठे हैं,
निज भाई को पशुओं से भी,
बदतर मान, हमारा जीवन
बिलकुल सड़कर नष्ट हुआ है,

एक बार फिर हिलमिल हमको
मिल सकता आज़ादी-दान !
आओ ! गावें भारत गान !

: ३० :

जागो मेरी भारत माता !
नव प्रकाश चारों दिश फैला ।
सोना अब न सुहाता !

सभी देश उठ खड़े हुए हैं,
स्वागत में नवयुग के;
नये नये पथ से सब कोई,
शान्ति खोजने जाता ।

अब भी तुम आलस में क्यों माँ,
पड़ी पड़ी सोती हो;
जननि ! तुम्हारी घोर नींद से,
चिन्तित हुआ विधाता ।

बिना तुम्हारी वत्सलता के,
राष्ट्र परस्पर लड़ते;
उठकर शान्ति सुखद फैलाओ,
जोड़ प्रेम का नाता ।

चौवन

: ३१ :

हमको तो स्वातंत्र्य चाहिए !

योग्य नहीं शायद हम अब भी,

सफल न होगे निज शासन मे—

इसकी किन्तु फिक्र क्या तुमको ?

हम पसन्द करते मरना भी,

पर इन अपने ही हाथों से !

धन्यवाद ! अब आप जाइये,

हमको तो स्वातन्त्र्य चाहिये !

करली खूब हमारी 'सेवा',

हम 'काले' अब सभ्य बने हैं,

कृपा करो बस छोड़ो, छोड़ो,

गिरते तो गिरने दो हमको,

आज़ादी से तो गिर लेंगे !

तम में पथ अब मत दिखाइये,

हमको तो स्वातन्त्र्य चाहिये !

मिल जावें मिट्टी मे चाहे,
मिट जावें चाहे पृथ्वी से,
किन्तु चाहते आज़ादी हम,
जीने, मरने, दोनों ही की,
सहे बहुत उपदेश आपके,

अधिक नीति अब मत सिखाइये,
हमको तो स्वातन्त्र्य चाहिये !

: ३२ :

स्वागत ! स्वागत ! भगिनि, भ्रातवर !

भारतमाता जननि हमारी,

धन्य मिले हम आज परस्पर !

अन्त हुई अब रात्रि अँधेरी,

ऊषा की हर्षित किरणों ने

पुलक खिलाईं आशा कलियाँ,—

आशा के इस प्रेम-पुष्प को,

आओ अर्पित करें जननि पर।

स्वागत ! स्वागत ! भगिनि, भ्रातवर !

यात्री हैं हम स्वराज्य पथ के,

स्वतन्त्रता ही तीर्थ हमारा,

सेवा का व्रत लिया सभी ने,

सत्य अहिंसा की साक्षी कर,

धन्य मिले जो आज परस्पर !

स्वागत ! स्वागत ! भगिनि, भ्रातवर !

: ३३ :

दीपावली की रात्रि के
ऐ दीपको ! घन तम मिटाओ !

देश में रजनी निराशा
की घिरी है ओर चारों,
ज्योति आशा की जगाकर
मार्ग सेवा का दिखाओ।

भूख, तृष्णा से करोड़ों
देशवासी मर रहे हैं;
प्रज्ज्वलित हो दीप ! उनमें
ज्योति जीवन की जगाओ।

स्नेहरूपी तेल में सद्-
ज्ञान की बाती डुबो कर,
द्वेष से पागल जगत को
प्रेम का पथ तुम दिखाओ!

: ३४ :

जय ! जय ! जय ! हे भारत-जननी,

प्यारी मात हमारी !

हिन्दू, ख्रिस्ती, सिक्ख, मुसलमिन,

सब सन्तान तुम्हारी ।

कठिन गुलामी में जकडी हो,

दुख-पिंजरे में तुम पकडी हो,

ताक़त दो आज़ाद करें माँ,

तोड़ बेड़ियाँ सारी ।

आज़ादी की पाक लड़ाई

में मिलजुल कर भाई भाई,

सत्य, अहिंसा के शस्त्रों से

काटें व्यथा तुम्हारी ।

आज़ादी की किरणों से खिल,

हम सब कलियाँ डालें हिलहिल

गले हार फूलों का जिनकी

खुशबू न्यारी न्यारी ।

: ३५ :

तीन रँग का झन्डा प्यारा,
ऊँचा उड़ हरदम फहराये !
सत्य, न्याय का चिन्ह हमारा,
प्रेम-सुधा सब पर बरसाये ।
इस झन्डे को आगे लेकर,
एक क़ौम बन क़दम बढ़ावें;
अपनी अपनी क़ुरबानी को
आज़ादी के लिए चढ़ावे,
फिर से प्यारा हिन्द हमारा
सुख की लहरों से लहराये;
तीन रंग का झन्डा प्यारा,
ऊँचा उड़ हरदम फहराये !
हिन्दू, मुसलिम, बौद्ध, पारसिक,
ब्राह्मण, हरिजन, सिख, ईसाई,
हमतो एक वतन के ही हैं,
आपस में सब भाई-भाई;
हिलमिल कर अब काम करेंगे,
आज़ादी भारत पा जाये ।
तीन रंग का झन्डा प्यारा,
ऊँचा उड़ हरदम फहराये!